ISSN 2231-5063
Volume-3, Issue-1, July-2013

अमृता प्रीतम की रसीदी टिकट : यथार्थ से यथार्थ तक

गीतू

शोध सारांश : ''यथार्थ से तात्पर्य, जो वस्तु अथवा घटना जैसी घटी है, उसका वैसा ही वर्णन करना। मनुष्य का जीवन अच्छाई तथा बुराई दोनों से परिपूर्ण होता है। मानव जीवन शक्ति तथा दुर्बलता, लघुता तथा महत्ता, कुरूपता तथा सुरूपता का समन्वय है। इन सभी का मिला जुला वर्णन यथार्थ के अन्तर्गत आता है।''[1] कोई भी रचनाकार तभी यथार्थवादी बनता है, जब वह अपनी रचना को मन से पूरी सच्चाई एवं साहस के साथ पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करता है। इस कार्य में उसे अनेक कठिनाईयों का सामना भी करना पड़ता है।

प्रस्तवाना –

अमृता प्रीतम यथार्थवादी लेखिका हैं और उनकी आत्मकथा 'रसीदी टिकट' एक यथार्थवादी रचना। इसमें अमृता प्रीतम ने बड़ी बेबाकी एवं निर्भीकता से अपने जीवन से जुड़े अनेक पक्षों को उद्घाटित किया है। वैसे भी आत्मकथा आत्मनिष्ठ विधा है। इसमें लेखक या लेखिका अपने व्यक्तिगत जीवन के अनुभवों को कलमबद्ध करता है। इसमें किसी दूसरे व्यक्ति द्वारा जीवन सत्यों का उद्घाटन न होकर स्वयं के जीये तथा भोगे गए जीवन का यथार्थ वर्णन रहता है। डॉ. हरिमोहन आत्मकथा को इस तरह परिभाषित करते हैं, ''आत्मकथा वह जीवनीपरक प्रबंधात्मक कथेतर गद्य विधा है, जिसमें लेखक सचेत होकर, अपने अतीत हुए समग्र जीवन का निःसंकोच निष्कपट और ईमानदारी से विवेचन विश्लेशण प्रस्तुत करता है। इसमें 'स्व' के साथ–साथ बाह्य विश्व से संबद्ध मानसिक क्रिया–प्रतिक्रियाओं, घात प्रतिघातों का कलात्मक अंकन होता है।''[2]. अमृता प्रीतम 'आत्मकथा को प्रायः चमकती दमकती एकांगी सच्चाई समझा जाता है – आत्मश्लाघा का कलात्मक माध्यम। पर बुनियादी सच्चाई को लेखक की अपनी आवश्यकता मानकर मैं कहना चाहूंगी– यह यथार्थ से यथार्थ तक पहुंचने की प्रक्रिया है।''[3] अमृता प्रीतम के जीवन की पीड़ा, दुःख, संघर्ष, हर्ष, विशाद, इश्क दीवानगी, कवयित्री मन, बाल्यकाल की घटनाएं, मां का हृदय, पत्नी की भूमिका, साहित्यिक जीवन में आए उतार चढ़ाव, सपनों की विचित्र, दुनिया अलौकिक अनुभव एवं दोस्ती के सुनहरे पल, सब कुछ यथार्थता के साथ 'रसीदी टिकट' पर मुहर लगाते हैं। अमृता की जिन्दगी के सभी पल वक्त की कोख में जन्में और उसी में मिट गए। लेकिन 'रसीदी टिकट' के जरिए वो सभी पल अपनी कब्रों से निकल आते हैं। वे लिखती हैं, ''समय की कब्र में सोया हुआ एक पल जाग उठा, जब बीस बरस की राजबीबी ने गुजरांवाला में साधुओं के डेरे में माथा टेका था और उसकी नजर कुछ उतने ही बरस के एक 'नंद' नाम के साधु पर जा पड़ी थी।''[4]. गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करने वाले यही नंद साधु और राज बीबी अमृता के माता–पिता बने। वे दोनो पंचखंड भसोड़ के स्कूल में पढ़ाते थे। राजबीबी जब गर्भवती हुई, तब गांव के मुखिया बाबू तेजासिंह की बेटियों ने गुरूद्वारे जाकर मास्टर जी के घर बच्ची होने की प्रार्थना की। उस दिन ईश्वर ने उन बच्चियों की प्रार्थना सुन ली और 31 अगस्त 1919 गुजरांवाला (पाकिस्तान) में एक बच्ची जन्मी। पिता ने उसका नाम अमृता रखा। फकीरी, अमीरी ईमानदारी और सादगी अमृता प्रीतम को विरासत में मिली। ग्यारह वर्ष की आयु में सिर से मां का साया हट गया। पिता जीवन से विरक्त हो गए। पिता के संस्कारों और प्रेरणा से अमृता ने लिखना शुरू किया और यही लेखनी, न केवल अमृता के जीवन की सच्चाई बल्कि उसका अपना एक अंग बन गई। उसके जिंदगी के बाकी सब शौक इसी में समा गए और लेखनी के साथ उसका दर्द का रिश्ता जुड़ता चला गया। लेखनी को ही उसने अपना हमदम, अपना हमसफर मानकर गले लगा लिया। वे लिखती हैं, ''जिंदगी में बहुत से ऐसे दिन आए हैं, जब हाथ में थामे हुए कलम को गले लगा कर रोयी हूं।''[5].

मां के जाने के बाद अमृता के मन से ईश्वर के प्रति आस्था, दृढ़ विश्वास धीरे–धीरे समाप्त होने लगा। पिता की आज्ञानुसार पूजा पाठ, ईश्वर का चिंतन जैसा कोई भी नियम वह अपने ऊपर लागू नहीं कर पाई और सोलहवें साल की दहलीज पर कदम रखते ही सपनों की अनोखी दुनिया में खो गई। एक अनजाना चेहरा कब हर रोज रात को उसके सपनों में दस्तक देने लगा और वह इस अनजाने हड्डियों के ढ़ांचे को रक्त मांस देने की चाहत में लिखती रही, ''ये वे दिन थे जिनके बाद मैंने कई दिन नहीं, कई महीनें नहीं, कई बरस दो सपनों में गुजार दिए। रोज रात को मेरे पास आना इन सपनों का नियम बन गया। गर्मी जाए, जाड़ा जाए, इन्होंने कभी नागा नहीं किया।''[6]. बीस–इक्कीस वर्ष की आयु में कल्पना किया हुआ वह चेहरा अमृता ने साहिर के रूप में देखा। साहिर की मुलाकात पर अमृता ने 'सात बरस' नाम से एक नज्म लिखी। देश के बंटवारे के समय चलती ट्रेन में अमृता ने 'वारिस शाह नूँ' कविता लिखकर दोनों देशों के लोगों को अपना बना लिया। इसी कविता ने अमृता प्रीतम को शोहरत दिलाई और पंजाब की पत्र–पत्रिकाएं उसकी प्रशंसाओं से भर गई। यह वह नज्म थी, जिसने सारी कायनात में मुहब्बत की गूंज पैदा कर दी थी,

''अज आखां वारिस शाह नूँ किते कबरां विच्चो बोल
ते अज्ज किताबे इश्क दा कोई अगला वरका खोल।''[7]

अमृता प्रीतम की जिंदगी में अनेक उतार चढ़ाव आए। चार वर्ष की आयु में सगाई, सोलह वर्ष की आयु में विवाह और बीस–इक्कीस वर्ष की आयु में मोहब्बत की सूरत में। 1960 से 1972 तक के वे साल थे, जब अमृता प्रीतम ने मास्को, बल्गारिया, हंगरी, युगोस्लाविया, वेस्ट जर्मनी, ताशकंद, ताजिकिस्तान, रोमानिया, इटली जैसे देशों में अपने साहित्य एवं संस्कृति को पहुंचाया और दूसरे देशों के साहित्यकारों के साथ हुए अनुभवों को अपनी किताबों में कलमब) किया, ''काहिरा आना मेरे लिए एक विलक्षण अनुभव है। एक ऐसी रेखा पर खड़ी हूं जिसके एक ओर काहिरा की हरियाली है और दूसरी ओर एकदम रेगिस्तान। रेगिस्तान में बसने वाले वे पिरामिड हैं, जिन्होंने पांच हजार वर्ष के सूरज देखे हैं... एक अरबी कहावत सामने खड़ी हुई दिखाई देती है– दुनिया समय से डरती है, समय पिरामिड़ से... ।''[8]. अपने जीवन में अमृता प्रीतम कभी अकेलेपन का शिकार हुई तो कभी साहित्यकारों की आलोचना का। लेकिन किसी भी परिस्थिति में अमृता ने सच और साहस का दामन नहीं छोड़ा। तभी तो अठारह वर्ष में एग्जीमे का कष्ट भोगने वाले अपने पति मोहन सिंह से कह पाई, ''आपके मन ने यह तलाक स्वीकार कर लिया है, पर आपके मन के अभी इर्द–गिर्द के लोगों की गुस्ताख आंखों और कसैली जीभों के सामने इस सच को स्वीकार नहीं किया है।''[9]. आठ जनवरी 1963 को अमृता अपने पति से अलग हो गई और फिर इमरोज जैसे शक्स से जुड़कर इश्क इबादत करते हुए अमृता के हौसलें समाज के सामने किसी तरह भी कम नहीं होते हैं, ''सोचती हूं क्या कोई खुदा इस जैसे इंसान से कहीं अलग होता है.... इमरोज अगर ऐसा न होता जैसा है तो मैं उसकी ओर देखकर यह शेयर कभी न लिख सकती– 'बाप वीर दोस्त ते खाविन्द, किसे लफ्ज दा कोई नहीं रिश्ता, उज जदो मैं तैंनू तक्किया–सारे अक्खर गूढ़े हो गए।''[10].

जीवन की कई देखी, सुनी और बीती घटनाएं कब और कैसे लेखक की रचना का अंश बन जाती हैं, यह कोई नहीं जानता। कभी चेतन तो कभी अचेतन तौर पर रचनाओं में उभर ही आती हैं। यही नहीं, लेखक के स्वयं अपने जीवन की बहुत सी बातें अक्सर उनकी रचनाओं के पात्रों में देखी जाती हैं, जो लेखक की अपनी मन की तहों से निकल कर कागजों पर जा उतरती हैं। अमृता प्रीतम की कहानी उपन्यासों के पात्र से निकल कर कागजों पर जा उतरती हैं। अमृता प्रीतम की कहानी उपन्यासों के पात्र कहीं न कहीं उसके अपने ही चेतन अवचेतन मस्तिश्क की उपज हैं। अमृता द्वारा लिखे 'यात्री' उपन्यास में महन्त किरपासागर के स्वभाव का वर्णन करते हुए उन्होंने अपने पिता को ही देखा है, ''बाप शब्द से ख्याल आया कि अगर मैं इस शब्द को उस बेचारे आदमी पर उतार दूँ (मुझे लगता है, इस शब्द को उसने एक गठरी की तरह उठाया हुआ है) और इस शब्द का भार मैं महंत किरपासागर जी के सिर पर रख दूँ, फिर?''[11]. इसी उपन्यास की पात्र 'सुदंरा' की कल्पना कहीं न कहीं अमृता की अपनी ही कल्पना थी। सुंदरा को चित्रित करते हुए जहां अमृता की आंखें भर आती हैं वहीं सुंदरा का चित्रण उनके लिए एक विपरीत अनुभव था। वे लिखती हैं, ''यह कागजों में से उठकर मेरी छाती में उतर गई थी... अचानक लगा, जैसे घोर अंधेरे में एकाएक दीया जल उठे कि यह सुंदरा मैं हूं.... ।''[12]. इसी तरह 1974 में लिखी 'पिघलती चट्टान' कहानी में राजश्री के चित्रण में अपनी बुआ 'हाको' का चित्रण अमृता के अवचेतन मन से कहीं न कहीं स्वतः ही हो गया। अमृता प्रीतम की जिंदगी में एक समय ऐसा भी आया जब उन्होंने अपने विचारों पर अपनी कल्पना का जादू चढ़ते देखा। यह समय वो था, जब उसने अपनी कोख में पलने वाले बच्चे की सूरत की कल्पना की। इसी कल्पना में उसने साहिर के चेहरे का ध्यान किया और दीवानगी के इस आलम में 3 जुलाई, 1947 को जब बच्चे का जन्म हुआ, तब उसे अपने ईश्वर पर यकीन हो गया कि बच्चे की सूरत सचमुच साहिर से मिलती थी। यह केवल कल्पना का सच था, हकीकत का नहीं। जब एक दिन उसके बेटे नवराज ने अमृता से पूछा, ''ममा एक बात पूछूं, सच–सच बताओगी। हां, क्या मैं साहिर अंकल का बेटा हूं? नहीं, पर अगर हूं तो बता दो। मुझे साहिर अंकल अच्छे लगते हैं। हां बेटे, मुझे भी अच्छे

लगते हैं। पर अगर यह सच होता तो मैंने तुम्हें जरूर बता दिया होता।''[13]. अमृता लिखती हैं, सच का अपना बल होता है, सो मेरी बातों पर बच्चे को यकीन आ गया।

अमृता प्रीतम ने जीवन में शोहरत, गुमनामी, बदनामी सब तरह के मौसम देखे। अपने से साढ़े छः बरस छोटे इमरोज से प्रेम करना, अमृता की जिंदगी का सबसे बड़ा सच था। साहिर और सज्जाद जैसे दोस्तों के बावजूद इमरोज पहली मुलाकात में ही अमृता से कई बरस बड़े हो गए, जिसने अपने और अमृता के अकेलेपन को नापकर उन्हें काफी ऊंचाईयों पर लाकर खड़ा कर दिया। जिंदगी के इस यथार्थ को अमृता प्रीतम ने अज्ञात का निमंत्रण माना, ''बरसों के रेगिस्तान में जब एक दिन इमरोज मिले, तो लगा–अज्ञात का निमंत्रण मिला है, और जब निमंत्रण मिल गया, तो लगा अब अज्ञात की ओर जाना ही होगा....''[14]. अज्ञात का निमंत्रण पाने के बाद अमृता इमरोज की सूरत को सपनों में देखती है और उसे इलाही दर्शन से जोड़ कर देखती है और उसकी इबाबत करती है, ''मैंने देखा–मेरी उठती जवानी की उमर है, और मेरी मां ने मेरे विवाह के लिए कोई आदमी चुना है। उस समय कोई मेरी उमर की लड़की है, जो मेरी मां को कहती है – इसका विवाह इसकी मर्जी के बिना कोई नहीं कर सकता....। उस वक्त मैं हंस कर कहती हूं – मां! मैंने जिसको ढूंढना था, ढूंढ चुकी हूं.... वह पूछती है – वह कौन है?मैं सामने आसमान की ओर इशारा करती हूं – जहां सबको कृष्ण की सूरत दिखाई देती है और फिर कृष्ण की सूरत कभी इमरोज की हो जाती है, और कभी कृष्ण की....।''[15]. अमृता प्रीतम एक ऐसी लेखिका है, जिसने हर कल्पना को अपनी लेखनी द्वारा पन्नों पर उतार लिया। फिर चाहे उनके वे विचित्र सपने ही क्यों न हों, जो अक्सर उसके जहन में उथल पुथल मचाते रहे, ''और मैं आग की लपट सी हैरान थी कि मेरे भीतर से यह सपनों की नीली सी लकीर कहां से निकलती है.... यह उस नीली सी लकीर का तकाजा था कि मैं हर कल्पना को धरती पर उतार लेना चाहती थी, अपनी कलम से भी और अपने कर्म से भी ....।''[16].

अमृता की जिंदगी दो शहरों से गुजरी। आधी लाहौर और आधी दिल्ली में। आधी गुलाम हिन्दुस्तान में तो आधी आजाद हिन्दुस्तान में। लेकिन अमृता के जीवन का महल यथार्थ की बुनियाद पर ही टिका रहा। अमृता प्रीतम जैसी निर्भीक और साहसी लेखिका ने अपने जीवन की सारी सच्चाई, सारे अनुभव, यहां तक कि स्वयं को कविताओं, कहानियों और उपन्यासों में उंडेलकर रख दिया। फिर चाहे 'सपनों की नीली लकीर' हो, 'लाल धागे का रिश्ता' या 'अज्ञात का निमंत्रण' हो या 'रसीदी टिकट', सभी में चेतन और अवचेतन मन की परतें दर परतें स्वतः खुलती जाती है। उनके जीवन की आप बीती घटनाएं, लौकिक, अलौकिक एवं कटु अनुभव उन्हें यथार्थ के बेहद निकट ला देते हैं। अपनी आत्मकथा के संबंध में अमृता प्रीतम सच ही लिखती हैं, ''केवल इस पार के किनारे का यथार्थ, जैसे कला की नदी को चीरकर, उस पार के किनारे का यथार्थ बनता है, वह प्रक्रिया इस आत्मकथा में भी है। यह रचना की अपनी प्रक्रिया है। मैं इस 'यथार्थ से यथार्थ तक' कहना चाहूंगी।''[17].

– संदर्भ –

1.शोध दिशा, संपादक–गिरिराज शरण अग्रवाल, पृ. 36, अक्टूबर–दिसंबर 2008 हिंदी साहित्य निकेतन, बिजनौर।
2.डॉ. हरिमोहन, साहित्यिक विधाएँ : पुनर्विचार, पृ. 260, प्रथम सं. – 1997 वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
3.अमृता प्रीतम, रसीदी टिकट, पृ. 148, सं. तीसरा–1982, पराग प्रकाशन, दिल्ली।
4.वही, पृ. 2
5.वही, पृ. 118
6.वही, पृ. 9
7.अमृता प्रीतम, धूप का टुकड़ा पृ. 97, द्वितीय सं. 1982, प्रकाशक – राजकमल प्रकाशन, प्राइवेट लिमिटेड, 8 नेता जी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली।
8.अमृता प्रीतम, रसीदी टिकट, पृ. 58–59, तीसरा सं. – 1982, पराग प्रकाशन दिल्ली।
9.वही, पृ. 73
10.वही, पृ. 78–79
11.अमृता प्रीतम, चुने हुए उपन्यास, पृ. 212, पांचवा सं. 1992, प्रकाशक – भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली।
12.अमृता प्रीतम, रसीदी टिकट, पृ. 93, तीसरा सं. – 1982, पराग प्रकाशन दिल्ली।
13.वही, पृ. 105
14.अमृता प्रीतम, अज्ञात का निमंत्रण, पृ. 65, प्रथम सं. 1994, किताबधर प्रकाशन, नई दिल्ली।
15.अमृता प्रीतम, लाल धागे का रिश्ता, पृ. 73, सं. 1993, राजपाल एंड सन्ज, कश्मीरी गेट, दिल्ली।
16.अमृता प्रीतम, सपनों की नीली सी लकीर, पृ. 8, सं. 1993, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली।
17.अमृता प्रीतम, रसीदी टिकट, पृ. 149, सं. तीसरा – 1982, पराग प्रकाशन, दिल्ली।